International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 415-416

इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में चित्रित महानगरीय बोध

सुरेंद्र कुमार[1], डॉ. जया लक्ष्मी पाटिल[2]
[1] शोधार्थी, हिंदी विभाग, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, उच्च शिक्षा शोध संस्थान, धारवाड, कर्नाटक, भारत।
[2] प्रोफेसर, हिंदी विभाग, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, उच्च शिक्षा शोध संस्थान, धारवाड, कर्नाटक, भारत।

प्रस्तावना

यद्यपि उपन्यासों का संबंध मुख्यतया ग्रामांचल से रहा है पर अनेक ऐसे उपन्यासकार रहे हैं जिन्होंने कस्बों–नगरों महानगरों के जन जीवन को वर्ण्य–विषय बनाकर उपन्यासों की रचना किए हैं। इन लेखकों ने महानगरीय विशिष्ट अंचलो के जन–जीवन की समस्याओं, संघर्षों, जीवन पद्धतियों और आकांक्षाओं का सहज चित्रण अपने उपन्यासों में किया है। लेखकों ने भी मोहल्लों की जीवन लीलाओं को वहां के रहने वाले की दृष्टि में देखा व उसे महसूस कर उसका जीवंत चित्रण किया है। कमलेश्वर राही मासूम रजा, गोबिंद मिश्र, शैलेष मटियानी, मनोहर श्याम जोशी, शिवानी रूद्र काशिकेय, अमृतलाल नागर, श्री लाल शुक्ल, शिवप्रसाद सिंह, मोहन राकेश, उदय शंकर भट्ट, अलका सरावगी, नासिरा शर्मा, हरि सुमन विष्ट आदि।

भूमंडलीकरण के आरंभिक दौर में शहर अपने आस–पास के गांव को अपने में समाहित करते हुए उनके वजूद को ही समाप्त करने की होड़ में लगे हुए हैं। इसी को विषय बनाकर हरिसुमन 'विष्ट' द्वारा 'बसेरा' उपन्यास लिखा गया है यद्यपि बसेरा उपन्यास का केंद्र बिंदु राजधानी दिल्ली से सटे शहर नोएड के सेक्टर 31 के पास का गांव निठारी है परंतु लेखक ने इसके माध्यम से संपूर्ण भारत की उपभोक्तावादी संस्कृति के कई पहलुओं पर दृष्टि डालते ुए अत्याधुनिक सुविधाओं से पूर्ण शहर बसने पर आलीशान कोठियां और माल संस्कृति के प्रभाव में व्यक्तियों के नैतिक मूल्यों में बेतहासा गिरावट की ओर इशारा किया है। पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, बंगाल और बंग्लादेश से काम की तलाश में आए लोगों को अनुमान नहीं था की उनकी जिंदगी इतनी उपेक्षित एवं निरीह बन जायेगी की उनके जीवन की वीभत्स घटनाएं भी उनके लिए नियति का चक्र ही लगेगी।

विष्ट जी ने महानगरीय जीवन में लोगों के नरक बनते जीवन को बहुत ही करीब से देखा है। 'बसेरा' उपन्यास बसेरों से दूर रहने वाले लोगों के अंतर्मन की पीड़ा और एक ठहरी जिंदगी की परतों के अंदर छिपी हलचल को अपनी करूणा का स्वर देता है। इस करूणा में कई अन्य आवाजें भी मिल जाती हैं। नोएड में घटित गांव निठारी की डरावनी घटनाएं आज भी हमारी मनुष्यता को शर्मशार करती हैं। उपन्यास वहां से आरंभ होता है जब निठारी में लोग खुशनुमा माहौल में जीवन जी रहे थे, गुर्जर, मुस्लमान और ब्राह्मन साथ में रहते थे, शिवालय और मजार साथ–साथ थे, लोग मानते थे कि बेल पत्ती का गहरा गाढ़ा रंग और मजार की चादर एक ही रंगरेज द्वारा रंगी गई है।

उपन्यास की कहानी दो धाराओं में चलती है। एक ओर सेक्टर की आलीशान कोठियों में रहने वाला सुविधा भोगी उच्च वर्ग है तो दूसरी ओर जीवन की मूलभूत जरूरतों के लिए संघर्षरतः निम्न वर्ग है। सन् 1971 के युद्ध के बाद पूर्वी उ प्र, बिहार और बंग्लादेश से आये गरीब लोग निठारी में झोंपड़ियां डालकर रहते थे। नोएड बसने के साथ उनकी खुशियों में इजाफा हुआ पर ईंट, सीमेंट और लोहे फसल की उगने से उनकी कठिनाइयां बढ़ती गई व जल्द ही उनकी सारी खुशियां हवा हो गई, ''अब गांव की खुशियां ही नहीं गई सब कुछ चला गया या फिर सब कुछ चले जाने की कगार पर पहुंच चुका था।''[1] उपन्यास में आदमी और उसकी औरत के माध्यम से महानगरों के चकाचौंध जीवन में पति–पत्नी के आपसी संबंधों में गिरावट का चित्रण लेखक ने बड़ी बारीकी से किया है। वह भारतीय संस्कारों को कबका छोड़ चुकी है। दुनिया का सुख, ऐश्वर्य भोगने की आकंक्षा रखने वाली औरत अमानवीय व्यवहार में पुरूषों को भी पीछे छोड़ चुकी है। घर परिवार से मुक्ति और भौतिक सुख की लालसा में अपने नौकरानी के पति की किडनी तक का सौदा करती है और अंततः पुलिस के चक्कर से बचने खातिर अपने पति को छोड़कर एवं दोनों बच्चों को लेकर घर से ही निकल पड़ती है। ''पुलिस के लफड़ों से भगवान ही बचाए चह समाचार छपते ही वह औरत घर से निकल पड़ी। कहां गई किसी को कानों–कान भनक नहीं लगी। अपने पति से मुक्ति पाने की इच्छा उसकी हमेशा बनी रहती थी, यह मौका उसने हाथ से जाने नहीं न दिया और अपने दोनों बच्चों को साथ लेकर चली गई थी।''[2] संवेदना के स्तर पर केवल औरत ही नहीं बल्कि आदमी भी उससे कम संवेदनहीन नहीं था औरत और बच्चों को जाने का इसे कोई गम नहीं था। वह बिल्कुल स्वतंत्र हो गया था, ''वह आदमी खुली हवा में सांस लेने लगा। घर फैक्टरी और अपना उसका बिजनेस न घर बच्चों की चिंता और न औरत की चिकचिक।''[3] जहां एक तरफ गीता सरकार की किडनी निकाले की घटना थी तो वहीं दूसरी ओर बच्चों की गुमशुदगी एवं उनके क्षत–विक्षत अंगों का मिलना भी निठारी की सामान्य घटना बन चुकी थी। इस घटना से जहां एक तरफ माताएं, गरीब मजदूर, पिता भारत देश स्तब्ध और मानवता शर्मसार थी वहीं पुलिस का संतरी उन पर व्यंग्य करता है, ''औलाद को पाल पोस नहीं सकते, देखभाल नहीं कर सकते तो पैदा करते ही क्यों हो?''[4] ''असहाय लोगों की पीड़ा अर्जुन साहू की मुस्तफा से कहे गए वक्तव्यों से प्रकट होती है, ''कुछ मत कहो मुस्तफा! इस शहर में अब पेट भरना मुश्किल होता जा रहा है। अपनागांव, अपनी जमीन, सब अपना ही होता है। हम उसे छोड़कर यहां चले आए। अब बिच्छु डंक मारने लगे हैं। जिसका दर्द सहन नही हो रहा है। एक के बाद एक दूसरी मुश्किल भयंकर होती जा रही है खेलते–खेलते बच्चे गायब हो रहे हैं। बच्चे बाहर ना जाएं तो कहां खेलें तो फिर कहां जाए। उनका बचपन तो बिना उनके किसी अपराध के घेरे में कैद हो रहा है।''[5]

झोपड़ियों की सनसनीखेज घटनाएं वहां किए लोगों के लिए सामान्य घटनाएं बन गई थी। लोग इन सभी घटनाओं को स्वाभाविक घटनाएं मानने लगे थे यद्यपि ये घटनाएं थमने का नाम

नहीं ले रही थी, ''एक के बाद दूसरी और फिर तीसरी घटनाओं का सिलसिला थमा नहीं। लोग उसकी पीड़ा को होंठों के बीच दबाकर संभालने का प्रयास कर रहे थे। यह सोचते कि ये सब स्वाभाविक रूप से घटने वाली घटनाएं है,जो कहीं भी और किसी के साथ भी हो सकती थी।''[6]

गुमशुदी, बलात्कार व हत्या जैसे खतरनाक व दर्द भरी घटनाओं के बावजूद लोग पेट की आग को शांत करने के लिए वही नारकीय जीवन को दोहराते हुए जी रहे थे। उपन्यास का अंत एक ऐसी कोठी की कहानी से होता है जिसका साहब अपनी काम वालियों के क्षत–विक्षप्त कर अपने को शांत करता है, पर नौकरानी यह सोचकर काम करती है कि वह मना करेगी तो कोई आकर करने लगेगी, ''उस आदमी के लिए औरत की कीमत कोई ज्यादा नहीं थी, वह कभी भी थोक में खरीद सकता था, आज वह किसी कुतिया को एक टुकड़ा रोटी का देता तो दूसरे दिन वह स्वयं जूठी रोटी के लालच में आ जाती।''[7]

संक्षेप में 'बसेरा' उपन्यास के माध्यम से लेखक ने झोपड़ पट्टी के लोगों की दुर्दशा के चित्रण के बहाने महानगरीय संस्कृति द्वारा गरीब जनता को हजम करने की व्यथा कथा कहीं है महानगरीय जीवन के चकाचौंध में हर ओर 'यूज एंड थ्रो' की संस्कृति पनपी है। पुलिस, डाक्टर, नेता, बिजनैसमैन सभी लालची, अययाश, भ्रष्ट व उपयोगितावाद के आधार पर एक दूजे से जुड़े हुए हैं। मीडिया की भूमिका जरूर एक हद तक सराहनीय रही है। लेखक ने जीवन की तमाम तकलीफों को उभारने के लिए अत्यंत सामान्य परिस्थितियों व रहस्यमय घटनाओं के बीच गहरा सामंजस्य बैठाया है मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा और सार्थक भविष्य की तलाश ही इस रचना के मूल में है।

इक्कीसवीं सदी में आत्मकथात्मक उपन्यास लेखन की परंपरा चल पड़ी है। आत्मकथात्मक उपन्यासों के जरिए लेखक के जीवन से जुड़ी छोटी–मोटी घटनाओं के अतिरिक्त उनसे संबंधित विशिष्ट अंचल का भी वर्णन दृष्टिगोचर होता है। लेखक अपनी कथा के माध्यम से अपने पूरे परिवेश का भी वर्णन करता है। जिससे उस विशिष्ट अंचल के रहन–सहन, रीति, रिवाज, खेती–बाड़ी परंपराएं आदि के बारे में जानकारी मिलती है। इस तरह के उपन्यासों में विवेकी राय का 'देहरी के पार' रामदरश मिश्र का 'बचपन का एवं मिथिलेश्वर का 'पानी बीच मीन पियासी' प्रमुख विवेकी राय 'देहरी के पार' में अपने युवा पुत्र ज्ञानेश्वर की अचानक मौत के बहाने ग्रामीण परिवेश के दुखद परिस्थितियों एवं रीति रिवाजों का चित्रण बहुत ही मार्मिक ढंग से किया है। मूलतः केंद्र में उपन्यासकार का परिवार एवं उसमें भी उससे संबंद्ध एक पीडादाई घटना होने के बावजूद समाज में घटने वाले सभी मानवीय सरोकार और अंतसंबंध मौजूद है जो समाज में घटित होते हैं ग्रामीण परिवेश के चित्रण में माहिर विवेकी राय के इस उपन्यास में भी कथा सूत्र गांव परिवार एवं गाजीपुर शहर के बीच घूमता रहता है उपन्यासकार बदलते गांव, बदलते संबंध के संदर्भ एवं टूटन का चित्रण बहुत ही सजगता से किया है।

रामदरश मिश्र का उपन्यास 'बचपन भास्कर का 2010 लेखक के बचपन के गांव का विभिन्न परिदृश्य व सामाजिक–सांस्कृतिक दशाओं को परिचय कराने के साथ लेखक के आत्मसंसार को भी उद्घाटित करता है। इसमें लेखक के ग्रामीण जीवन के प्रति लगाव को भी देखा जा सकता है। ग्रामीण अंचल में शिक्षा की स्थिति वहां की परंपराओं, रीति–रिवाज एवं जीवन पद्घतियों का भी चित्रण लेखक ने बहुत मनोयोग से किया है। उपन्यास में उन कठिनाइयों का भी उद्घाटन हुआ है जिसके कारण तत्कालीन समाज में गति और परिवर्तन की प्रक्रिया बहुत जी शिथिल और मंथर थी। इसके साथ–साथ किसान जीवन, मौसम, गांव के त्यौहार उत्सव और राग–रंग के साथ–साथ ग्रामीण जीवन के अनेक संकटों को भी गहरी संवेदना के साथ लेखक स्मरण कराता है मिथलेश्वर ने 'पानी बीच मीन पियासी' 2010 में अपने जीवन संघर्षों के साथ–साथ ग्रामीण परिवेश के जातिगत विद्वेष, खेती के कठिन एवं जटिल संघर्ष, लैंगिक भेदभाव एवं अराजक स्थितियों का चित्रण बहुत ही रोचकता के साथ किया है। ग्रामीण परिस्थितियों में विभिन्न अभावों से जूझते हुए भी ग्रामीणों का अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए कठिन संघर्ष के साथ–साथ शहरी समाज में भी मध्यवर्गीय जीवन की विसंगतियों को उपन्यास में उजागर किया गया है। गवई संस्कार हमेशा व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करता है तथा वह व्यक्ति को अपनी जड़ों से अलग नहीं होने देता। प्रस्तुत उपन्यास में यह बात दृष्टिगोचर होती है। लेखक ने गुंजलक आरा 'बिहार' के आस–पास के गांवों में जातियों के वर्चस्व को बड़े साफ तौर पर बताया कि कैसे बहुसंख्यक जातियां, अल्पसंख्यक जातियों पर हावी तथा पुरखों की विरासत को संजोये रखने की अभिलाषा रही। लेखक द्वारा गांव छोड़ने का फैसला सही साबित होता है तथा नीच चाकरी जैसी अवधारण खंडित होती है। लेखक की यह अवधारण ग्रामीण सोच में भारी परिवर्तन को प्रदर्शित करता है। गांव द्वारा निरंतर तंग किए जाने के बाद भी दुख में गांव वालों के साथ आने की घटना को लेखक गांव की बुनियादी संवेदना के सच के रूप में स्वीकार करता है।

निष्कर्षः

इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों पर विहंगम दृष्टि डालने से स्पष्ट होता है कि इस सदी के उपन्यासकारों ने विशिष्ट क्षेत्रों के चित्रण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके उपन्यासों के माध्यम से जन–मानस के समक्ष एक विशिष्ट अंचल में रहने वाले लोगों की परेशानियों, रीति–रिवाज, रहन–सहन,खेती–बारी, पर्व–त्यौहार, भाषा आदि के बारे में सारी जानकारी मिलती है, जिसके द्वारा अन्य अंचल के लोग उनसे संवेदात्मक स्तर पर जुड़ाव का अनुभव करते हैं। फणीश्वर नाथ रेणु से प्रारंभ हुई उपन्यास लेखन की परंपरा 21वीं सदी में भी अपने समृद्वतम स्थिति में है। 21वीं सदी के उपन्यासों में ग्रामांचल के साथ–साथ विशिष्ट अंचल का वास्तविक चित्र देखने को मिलता है।

संदर्भ

1. रामशिरोमणि होरिलः गमके माटी गांव की, पृष्ठ–2
2. रामशिरोमणि होरिलः गमके माटी गांव की, पृष्ठ–36
3. रामशिरोमणि होरिलः गमके माटी गांव की, पृष्ठ–39
4. रामशिरोमणि होरिलः गमके माटी गांव की, पृष्ठ–60
5. सूर्यदीन यादवः अंधेरा जहां उजाला, पृष्ठ–17
6. संपा डॉ0 दयानिधि त्रिपाठी, डॉ माया प्रकाश पाण्डेयः कथाकार सूर्यदीन यादव, पृष्ठ–98
7. सूर्यदीन यादवः अंधेरा जहां उजाला, पृष्ठ–35